गुरुवार, दि. १६-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ८

यह मोक्षमार्ग का सप्तम अध्याय चलता है। उसमें सात तत्त्व की श्रद्धा की विपरीतता अनादि काल से जीव को है। सात तत्त्व की विपरीत मान्यता, उसमें मोक्षतत्त्व की बात चलती है। पहले कहा कि जगत मोक्ष किसको मानता है? कि सिद्ध होना और लोकालोक को जानना और जन्म-मरण के दुःख से रहित होना उसको मोक्ष कहते हैं। परन्तु ऐसा मोक्ष का स्वरूप है नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात है, हाँ! भाईलालभाई! कभी सुनी न हो, वहाँ पैसा कमाने से फूरसद कहाँ है? कभी सुनने जाये तो बाहर का सुने। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- बाहर का सुने माने क्या?

उत्तर :-- बाहर का सुने यानी ये दया करो, दान करो, भक्ति करो, व्रत करो, पूजा करो तो धर्म हो। पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- हमें तो जो सुनाये वह सुनना पड़े।

उत्तर :-- ऐसे तो नरम आदमी है न, ऐसे तो नरम है न। कुछ तुलना तो करेगा कि नहीं कि न्याय क्या है? भाईलालभाई! तुलना तो करे कि यह तत्त्व क्या है।

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा, जैसे छोटीपीपरमें से चौसठ पहोरी प्रगट दशा हो जाती है, ऐसे भगवान आत्मा में सर्वज्ञपद अंतर में सर्व को पड़ा है। उसमें-से अंतर अनुभव करके अंतर आनंद की लीनता करते-करते सर्वज्ञपद हो जाता है। जैसे वह चौसठ पहोरी पीपर हो जाती है, ऐसे यहाँ पूर्ण केवलज्ञान आत्मा में पड़ा है (वह) प्रगट होता है। वह सर्वज्ञ भगवान, धर्म का मूल क्या चीज है और अनंत काल से क्यों परिभ्रमण करता है, वह बात करते हैं।

यहाँ तो कहा कि जीव-अजीव का भान नहीं। पहले से कहते हैं कि आत्मा किसको कहते हैं? और जड़ किसको कहते हैं? यह जड़ की देह की दशा है, चलना-फिरना होता है वह अपने से होता है ऐसा मानना, आत्मा से होता है ऐसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ जीव है। अजीव जड़ का अंश जड़ की पर्यायरूप--हालतरूप अंश अपना आत्मा से होता है, उसको जड़ का भान नहीं। उसको जड़ की श्रद्धा की खबर नहीं। और मेरे आत्मा में ज्ञानादि होता है वह इन्द्रियों से होता है ऐसा मानना वह आत्मतत्त्व की भूल है। नवरंगभाई!

यह आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु अपनी पर्याय में ज्ञान से, दर्शन से, वीर्य से जानता-

देखता है। उसमें ऐसा जानना कि यह इन्द्रिय आदि अवयव मिट्टी है उससे मेरे में ज्ञान होता है, उसको अपनी वर्तमान ज्ञान की पर्याय की जीव के अंश की भी स्वतंत्रता की खबर नहीं। उसको जीवतत्त्व की खबर नहीं, अजीव की खबर नहीं। आत्मा में दया, दान परिणाम होता है वह पुण्यास्रव है। दया, दान, भक्ति, व्रत, तप का भाव होता है वह राग है, पुण्य है। उसको धर्म जानना वह आस्रवतत्त्व की भूल (है)। समझ में आया?

और संवर में, संवर नाम धर्म की शुद्धि, उसमें बाह्य का विकल्प उठते हैं-- भेद, राग उसको संवर मानना वह संवर की भूल (है)। और उपवास करने से मुझे धर्म होता है वह निर्जरातत्त्व की भूल (है)। सूक्ष्म बात है। अनंत काल में सुनी नहीं, कभी किया नहीं। ऐसा साधारण नहीं किया? अनंत बैर मनुष्यदेह पाया, अनादि का आत्मा है, अनंत-अनंत अवतार हुआ परन्तु सच्चा सम्यक्ज्ञान--आत्मज्ञान (हुआ नहीं)। समझ में आया? नरसिंह महेता भी कहते हैं न उसकी अपेक्षा से? 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिह्नयो नहीं, त्यां लगी साधना सर्व झूठी'। क्या है? आत्मा क्या कर सकता है? और कितना अंश जड़ में अपना अधिकार रखता है, खबर नहीं। यूँ ही ओघेओघे (मानता है)। ओघे को क्या कहते हैं? तुम्हारी हिन्दी भाषा किसे आती है? यहाँ कहीं सब हिन्दी भाषा आती है? ओघेओघे माने समझे बिना। ओघेओघे समझे बिना मान लेता है। सत्य क्या है, इसकी खबर नहीं।

और अपने में पुण्य-पाप का भाव से बन्ध होता है, नया कर्म का बन्ध होता है। उसमें पाप से बन्ध होता ऐसा माने, परन्तु पुण्य से बन्ध होता है उसको भला माने, वह बन्धतत्त्व की भूल मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया? और अब मोक्षतत्त्व की भूल बताते हैं। समझ में आया? कहाँ गये बड़े? .... यह सब सुनना पड़ेगा, हाँ! पिताजीने मकान किया है तो। महाबळेश्वर घुमने जाना उसके बदले यहाँ ठीक है। पैसेवाले के लड़के बाहर घुमने जाये, जब गरमी का मौसम हो तब।

अरे.. भगवान! यह चैतन्यतत्त्व, इस देह के परमाणु से भिन्न तत्त्व, उसकी क्या क़ीमत है, उसकी क्या चीज है, उसकी क़ीमत करे बिना शरीर, लक्ष्मी मेरी उसकी क़ीमत करता है, वह आत्मा का खून, अनादर करता है। और अपनी पर्याय नाम अवस्था में पुण्य-पाप का भाव होता है, दया, दान, व्रत का, उसकी क़ीमत करता है कि वह बड़ी चीज है, तो विकार रहित मेरी चीज सच्चिदानंद सिद्ध समान जो सिद्ध परमात्मा अरिहंत हुए, उन्होंने अपने अन्दर से पर्याय निकाली। वह क्या चीज है उसकी क़ीमत करते नहीं और पुण्य और पाप, शुभ-अशुभ भाव की क़ीमत करते हैं, वह आत्मा की हिंसा करते हैं। आत्मा की हिंसा करते हैं। पोपटभाई! उसका

सब सुलटा हुआ है। वह बोलते हैं सब सुलटा। समझ में आता है? कुंवरजीभाई! यह समझ में आता है? सुनायी देता है न? समझ में बाद में आयेगा।

ओहोहो..! शास्त्र का रहस्य खोलकर पंडितजी ने इसमें रखा है। तो कहते हैं, यहाँ देखो मोक्षतत्त्व। मोक्ष क्या मानते हैं? कि अहो..! स्वर्ग में जाना और वहाँ लड्डु-बड्डु मिले.. समझे? उसको मोक्ष की खबर नहीं। मोक्ष तो आत्मा का... देखो यहाँ थोड़ा लिया है। '**वह दोनों अवस्था में सुखी-दुःखी नहीं है;...**' परमाणु है न परमाणु? यह परमाणु है न? परमाणु, यह रजकण-पोईन्ट जड़ है, यह जड़ है। यह परमाणु है न? मिट्टी, परमाणु माने वह कपड़े का परमाणु निकाले वह नहीं, यह पोईन्ट है, यह पोईन्ट--टूकड़ा है। अंतिम पोईन्ट करो, इसका टूकड़ा करते-करते, करते-करते आखिर का पोईन्ट, उसको भगवान परम-अणु, परम-अणु बहुत सूक्ष्म अणु कहते हैं। उसका दो भाग हो सके नहीं। वह परमाणु जब इस पिण्ड के साथ है तो उसमें विभाव है। छूटा पड़े तो स्वभाव है। परन्तु इस पिण्ड के साथ रहे तो भी परमाणु दुःखी नहीं और भिन्न पड़े रजकण, रजकण उसमें से, तो सुखी नहीं। है कहीं सुखी? ऐसे '**दोनों अवस्था में सुखी-दुःखी नहीं है;...**' परमाणु का दृष्टान्त दिया है, रजकण पोईन्ट।

'**आत्मा अशुद्ध अवस्था में दुःखी था...**' अरे..! अनादि काल की मलिन अवस्था, पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान, व्रत, भक्ति, जप, तप ऐसा जो मलिन भाव, पुण्य-पाप दोनों मलिन है। वह दुःखी था। अशुद्ध अवस्था में दुःखी है। बराबर है? फिर ये पैसेवाला सुखी है, कौन कहता है? भाईलालभाई की बड़ी बात चलती है कि वह बड़े जे.पी. है, ऐसा है, वैसा है। बोलने में आये? दुनिया दूसरे प्राणी को संयोग की अपेक्षा से बोलते हैं, सुखी है नहीं। देखो! '**आत्मा अशुद्ध अवस्था में दुःखी था...**' अनादि काल से कर्म का निमित्त संयोग और अपनी पर्याय नाम दशा में शुभ-अशुभ, काम, क्रोध, दया, दान विकल्प का, विकल्प नाम लागणी की उत्पत्ति अन्दर होती है शुभ-अशुभ, वह सब दुःख है। आहाहा..! शेठी!

'**अब उसका अभाव होने से...**' जब यह आकुलता है अन्दर पुण्य-पाप, शुभ-अशुभ की वह अपना स्वभाव का भानकर अशुद्धता का अभाव हुआ (तो) '**निराकुल लक्षण अनन्तसुख की प्राप्ति हुई।**' उसका नाम मोक्ष है। आकुलता का नाश होकर अनाकुल अंतर आत्मा में आनन्द पड़ा है, उसका अनुभव करते-करते प्रगट दशा में--पर्याय--हालत में दुःख के स्थान में, दुःख गया और आत्मा का आनन्द अन्दर में पूर्ण प्रगट हुआ उसका नाम मोक्ष कहने में आता है। मोक्ष कोई दूसरी चीज नहीं। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'।

'**तथा इन्द्रादिकके जो सुख है वह कषाय भावों से आकुलतारूप है,...**' इन्द्र और सेठ को जो सुख है वह आकुलता है। भाईलालभाई! आकुलता कहते हैं। ऐसा सँभालना, यह सँभालना, यह रखना..

मुमुक्षु :-- मुनि को...

उत्तर :-- अरे..! मुनि को हो? ये सब सेठ घुमते हैं उसके लिये यह बात चलती है। मुनि को आकुलता कैसी? मुनि को आनन्द है। मुनो--अन्दर आत्मा सच्चिदानंद प्रभु, उसका अनुभव करते हुए मुनियों को तो वीतरागी सुख है। 'नवी सुखी सेठ सेनापति...' आता है न? 'नवी सुखी ...' पृथ्वी का राजा भी सुखी नहीं, देवता का देव भी सुखी नहीं है। 'एगंत सुखी मुनि वीतरागी'। लेकिन मुनि किसे कहना, यह बहुत सूक्ष्म बात है। अभी लोग मान बैठते हैं ऐसा मुनिपना है नहीं। ऐसा मुनिपना है नहीं।

अपना आत्मा अंतर सच्चिदानंद आनन्द, आनन्द, आनन्द अंतर पड़ा है, उसमें अंतर में घुसकर आनन्द का अनुभव की उग्रता जिसकी दशा में हो, जिसको प्रतिकूलता का दुःख नहीं, अनुकूलता का सुख नहीं, अंतर भूमिमें से, अंतर आत्मधाममें से, अंतर चैतन्यधाममें से आनन्द निकालकर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हो, उसको मुनि कहते हैं। समझ में आया? वह थोड़ी सूक्ष्म बात है। वर्तमान में चलता है कुछ और मार्ग का स्वरूप कहीं और रह गया है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा देवाधिदेव कहते हैं कि, अरे.. प्रभु! तूने, तेरी चीज की क्या क़ीमत है और विकार की क्या तुच्छता है, तूने जानी नहीं, तूने कभी जानी नहीं। समझ में आया? परपदार्थ की तो तुच्छता है ही, परन्तु अपनी पर्याय नाम हालत में पुण्य और पाप का भाव होता है वह तुच्छ है। उसकी कोई क़ीमत है नहीं। धर्मी की दृष्टि में उसकी कोई क़ीमत नहीं। ओहोहो..! धर्मी की दृष्टि में वह शुभ और अशुभ पुण्य-पाप का भाव से अलग अन्दर होकर अखण्डानंद प्रभु चैतन्य का अंतर आनन्द की दशा की प्राप्ति हो, उसकी क़ीमत धर्मी की दृष्टि में है। समझ में आया? बाकी क़ीमत, धर्मी की दृष्टि में दूसरी क़ीमत है नहीं।

तो कहते हैं कि, '**इन्द्रादिक के जो सुख है वह कषाय भावों से आकुलतारूप है,...**' इन्द्र और गृहस्थ, पैसेवाले अरबोपति, ये वाईसरोय ने फलाना, ढिकना बड़े कहलाते हैं, सब को आकुलता है अन्दर। विकल्पों की लागणी की, जैसे पूनी रूई की पूनी एक टूटे और दूसरी जोड़े, एक टूटे और तीसरी जोड़े, वैसे एक राग से दूसरा राग, दूसरे राग से तीसरा राग.. राग की धारा अज्ञानीयों को संसारदशा में पुण्यवंत को या पापी को, दोनों को विकार की लागणी की धारा बहती है, वह दुःख है।

कहो, समझ में आया? '**सो वह परमार्थ से दुःखी ही है;...**' वह सेठ और इन्द्र का सुख वह परमार्थ से दुःख है। '**इसलिये उसकी और इसकी एक जाति नहीं है।**' मोक्ष के आनन्द की और इन्द्र के सुख की जाति एक नहीं है, जात ही अलग है।

'**तथा स्वर्गसुख का कारण प्रशस्तराग है,...**' क्या कहते हैं? ये स्वर्ग और पैसा मिलने का कारण शुभराग है, पुण्यराग--दया, दान, आदि शुभराग हो उससे पैसा मिले अथवा स्वर्ग मिले। उससे आत्मा की मुक्ति होती नहीं। '**मोक्षसुख का कारण वीतरागभाव है;...**' आत्मा की परम पूर्ण आनन्ददशा उसका कारण तो अन्दर अकषाय भाव, वीतरागभाव, शुद्ध परिणति भाव, निर्दोष दशा की परिणति मोक्ष का कारण है। स्वर्ग के कारण में राग और मोक्ष के कारण में आत्मा के आनन्द की पवित्र निर्मल दशा, दोनों के कारण में अंतर है। स्वर्ग के कारण में और मोक्ष के कारण में अंतर है। अज्ञानी को वह मालूम नहीं है कि क्या कारण स्वर्ग का है और क्या कारण स्वर्ग का (है)।

मुमुक्षु :-- पूर्व-पश्चिम जितना।

उत्तर :-- पूर्व-पश्चिम जितना, ऐसा होगा?

'**इसलिये कारण में भी विशेष है;...**' कार्य में तो विशेष है लेकिन कारण में भी विशेष है। '**परन्तु ऐसा भाव इसे भासित नहीं होता।**' अनादि अज्ञानी जीव धर्म के नाम से दया, दान, व्रतादि में धर्म मानकर पड़ा, उसको मोक्ष की क्या चीज है उसका भावभासन होता नहीं, भावभासन नहीं होता। जैसे पोपट को मूँगफली दे न, मूँगफली? मूँग का दाना। बोलो पोपट, रघुराम। उसको कहाँ भान है कि रघुराम यानी दाना होगा या पूरी होगा? पूरी खिलाते हैं न पोपट को पींजरे में? बोलो पोपट, रघुराम। उसको ऐसा लगे, यह पूड़ी का नाम होगा या दाने का नाम होगा? रघुराम कहना किसको? 'निजपद रमे सो राम कहीये' भगवान आत्मा अखण्डानंद पवित्र स्वरूप, उसकी पूर्ण दशा प्राप्त कर अपने स्वरूप में रमे, वह राम नाम आत्मा उसको कहने में आता है। ऐसे आत्मा की खबर नहीं, तो पोपट को पूड़ी और दाना को मान ले कि यह (रघुराम) होगा। मीठा लगे न।

ऐसे अनादि अज्ञानी को पुण्य और पाप में, बाह्य चीज में धर्म मानकर मैं कुछ धर्म करता हूँ, ऐसा मानता है। लेकिन राग से रहित अपनी निर्विकल्प चीज क्या है उसकी श्रद्धा-ज्ञान की भी खबर नहीं, तो चारित्र तो कहाँ-से होगा? बहुत सूक्ष्म बात है। अनंत काल हुआ।

अनंत काळ थी आथड्यो विना भान भगवान,
सेव्या नहीं गुरु संतने मूक्युं नहि अभिमान।

अनादि काल से अनंत भव कियो, परन्तु चैतन्य की जाति सत् समागम से, गुरुगम से एक समय भी पीछानी नहीं।

'**ऐसा भाव इसे भासित नहीं होता। इसलिये मोक्ष का इसको सच्चा श्रद्धान नहीं है।**'

'**इसप्रकार इसके सच्चा तत्त्वश्रद्धान नहीं है।**' टोटल सातों तत्त्व का। अनादि अज्ञानी इन सातों तत्त्व की भूल कर रहा है। '**इसलिये समयसार में कहा है कि अभव्य को तत्त्वश्रद्धान होने पर भी मिथ्यादर्शन ही रहता है।**' क्या कहते हैं? एक अभवी जीव होता है। जैसे कोरडु मुँग होता है न? कोरडु मुँग। क्या कहते हैं तुम्हारी हिन्दी में? मुँग, मुठ, उडद कोरडु होता है। लाख मण पानी पीलाओ तो कोरडु पीघले नहीं। कूटकर चूरा करो तो पापड़ हो। लेकिन पीघले नहीं। लाख मण पानी लाख लकड़ी रखो, कोरडु मग (पीघलता नहीं)। समझ में आया? ऐसे ऐसी एक जीव की जात है कि उसे चाहे जितना सत्य समझाओ, तत्त्वार्थ की श्रद्धा करे परन्तु आत्मज्ञान क्या है उसकी श्रद्धा नहीं करता। शेठी!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं, दूसरी बात कहते है यहाँ। तत्त्वश्रद्धान नाम विकल्पवाली श्रद्धा, रागवाली श्रद्धा। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष राग का भेद से मानता है। लेकिन मैं अखण्ड आत्मा, विकल्प नाम राग से निर्विकल्प मेरी चीज जुदी है--भिन्न है ऐसा अभवी प्राणी, कोरडु मुँग जैसा कभी आत्मा की प्रतीत, अनुभव करता नहीं। त्यागी हो, मुनि हो, योगी हो, बाह्य क्रियाकांड करे, कदाचित् स्वर्ग में जाये, सात तत्त्व को समझता नहीं। समझ में आया? कहो, 'मोहन मोती' आते थे न भाई? गढडावाले। भाई पहिचानते होंगे। मोहनलाल मोतीचंद। अस्पताल में थे न? कल देखने गये थे न। ..., यहाँ बहुत काम किया। यहाँ देह छूट गया। वहाँ देह छूट गया। यहाँ आठ दिन पहले दर्शन करने आये थे। यहाँ हमेंशा दर्शन करने आते थे। ... वाला इन्सान था। बहुत बार आये। एक बार कहते थे, महाराज! ऐसी बात तो कहीं सुनने नहीं मिलती। कहीं नहीं है। कहा, आप लोग सांढ जैसे... भाईलालभाई! पाँच-पचास लाख हुए, दस लाख हुए, इज्जत बड़ी और ... के पास जाये, सांढ जैसे कूड़ा उठा रहे हो। पोपटभाई! सेठ! समझ में आता है? वह मोती था न? बुद्धिशाली था। मोहनलाल, हमेंशा यहाँ आनेवाले, हमेंशा आनेवाले, हाँ! यह बात हम को तो कहीं सुनने नहीं मिलती है। मैंने कहा, आप सब लोग (मानते हो) दुनिया का काम

कर दे, इसका कर दे और गढड़ा को भी सुधार दिया और ऐसा था और ऐसा कर दिया। वहाँ थोड़ा किया था न, अन्दर मकान-बकान (बनाया था)। हम तो छोटी उम्र से जानते हैं न, छोटी उम्र से। समझ में आया? दीक्षा लेनेवाले थे तब उनके घर ले गये थे। मैंने कहा, मैं रात्रि को चाय पीता नहीं। मैं तो चाय पीता ही नहीं था, दिन में दूध पीता था। रात को बैठने आयेंगे। दीक्षा लेने से पहले, (संवत) १९७० से पहले, १९६८ की बात है। १९६८ की। तब से जानते हैं उनको। पचास वर्ष (हुए)। फिर (कहते थे), यह बात... आहाहा..! और सेठ लोगों को तो सब मक्खन लगाये।

मुमुक्षु :-- बहुतों के काम होते हैं न।

उत्तर :-- बहुत काम धूल का भी नहीं करता है। किसने किया है? राग और द्वेष करता है वह, क्या पर का काम कोई कर सकता है? पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- राग-द्वेष..

उत्तर :-- ये कूड़े का ढेर होता है न? विष्टा, गोबर, राडा (ज्वारा, बाजरे का डंडा) हो, साँढ कहाँ जाता है, मालूम है? दिवार में सर रखे तो क्या ... पड़े? फिर राडा, गोबर, राख सर पर गिरे। भाईलालभाई! मोहनभाई थे न, बात की थी। यह तो प्रसिद्ध बात है न। राजा, महाराजा सब... कहा, क्या है यह? आप दूसरे का काम कर देते हो और उससे हमारा कुछ काम होगा। राडा और गोबर सर पर गिरता है। राडा समझते हो? राडा को क्या कहते हैं? कूड़ा, कचरा नहीं लेकिन बाजरा, ज्वारा का जो दाना होता है न, सांठी, आप में सांठी कहते हैं न? बिगड़ गया हो तो कूड़े में डाले। फिर बड़ा साँढ हो वह दिवार में कहाँ माथा मारे? ऐसे मारे तो गिरे सर पर। ऐसे दुनिया का कूड़ा उठाने के लिये दुनिया प्रयत्न कर रही है। उस प्रयत्न से कुछ होता नहीं। उसके प्रयत्न में राग और द्वेष हो, उसका फल बन्धन होता है।

मुमुक्षु :-- उसका अभिमान तो हो न।

उत्तर :-- धूल भी नहीं है, जहाँ-तहाँ अभिमान करता है, हमने किया, हमने किया, हमने किया। हमारे नाम की तख्ती लगाओ। तख्ती, मैं उसको तस्दी कहता हूँ। तस्दी बहुत करे। महेनत बहुत पड़े। दस हजार और एक फलाना, फलाना उसकी पत्नी के स्मरणार्थ, उसके पुत्र के शादी के प्रसंग में। सब नाम आये। उसका नाम आये, उसके पिताजी का आये, स्त्री का आये और पुत्र का आये। तब उसे प्रसन्नता हो। तेरे पुण्य का भी ठिकाना नहीं है, तुझे पाप बँधता है, धर्म तो कहाँ था? समझ में आया? ऐसा लिखे, सोभागचंद अमृतलाल, ह. उनकी पत्नी के स्मरणार्थ, उनके

पुत्र अमृतलाल के शादी के प्रसंग पर। चारों नाम आ गये। शेठी!

मुमुक्षु :-- तो संतोष हो न।

उत्तर :-- धूल में भी संतोष नहीं है। उससे संतोष है? मैंने राग, तृष्णा कम की। पचास हजार दिये, मैंने तृष्णा कम की उतना कषाय मंद हुआ, उतना मेरा भाव है। दुनिया दे या नहीं, दुनिया लिखे या नहीं, यह मुझे मालूम नहीं, मुझे क़ीमत नहीं है। जितनी तृष्णा कम करे उतना उसे पुण्य हो। पुण्य का बन्धन हो, धर्म-बर्म धूल में भी नहीं होता। समझ में आया? आहाहा..! जगत से विपरीत बात है, भाई! दुनिया से मोक्ष का मार्ग कोई अलग जात का है। लेकिन सब को ऐसे राह पर चढा दिये कि होगा, होगा, धीरे-धीरे होगा न, सीधा कहीं बी.ए. थोड़ा पढ़ा जाता है। ऐसी क्रियाकांड करें, व्यवहार कुछ सुधरे, बाद में धीरे-धीरे धर्म होगा। कोयला को साबून से धोयें, लाख मण साबून से धोये तो कोयला सफेद हो। धूल भी नहीं होगा, सुन न। कोयला को सफेद करना हो तो जलाना ही पड़े। सफेद राख हो। उस कोयले को रखकर तू लाख मण साबून से धो, कोयले का काला रंग छूटता नहीं। ऐसा तेरा संसार का पुण्य-पाप का कार्य कोयले जैसा मलिन भाव है, उससे आत्मा का कुछ सुधार हो, लाख मण साबून से कोयला सफेद हो तो उसे धर्म है। समझ में आया? कोलसा समझते हो न? आप की सब भाषा नहीं आती है।

'**इसलिये समयसार में कहा है कि अभव्य को तत्त्वार्थश्रद्धान होने पर भी...**' मिथ्यादृष्टि कहा है। शेठी! ऐसे तो माने कि जीव है, अजीव है, पुण्य-पाप है, लेकिन अंतर में पुण्य का परिणाम शुभराग आये न, दया का, व्रत का, भक्ति का, पूजा का, यात्रा का, वह मुझे कल्याण का कारण है। ऐसी मिथ्यादृष्टि मूढ को विपरीत श्रद्धा रहती है, जिससे उसका जन्म-मरण की गाँठ गलती नहीं। जिसको ग्रंथिभेद कहते हैं, ग्रंथिभेद। राग की क्रिया, पुण्य की क्रिया और आत्मा--दोनों भिन्न है ऐसा भास हुए बिना राग से धर्म मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। तत्त्वार्थ का श्रद्धान है, सम्यग्दर्शन, भान नहीं।

'**तथा प्रवचनसार में कहा है कि आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नहीं है।**' लो, आत्मज्ञानशून्य तत्त्वार्थश्रद्धान कार्यकारी नहीं है। आत्मा का ज्ञान हुए बिना तेरा तत्त्वश्रद्धान भी राग का कारण है, पुण्य का कारण है, स्वर्ग मिलेगा। जन्म-मरण का अंत तो होगा नहीं। समझ में आया? आये हैं कि नहीं आये हैं भाई? नहीं आये होंगे। दुर्गादासजी नहीं आये हैं, लड़के के पास है, लड़के के पास है। कहा, चिंता मत करीये। लड़कों को कहा, महेमान है।

'**तथा व्यवहारदृष्टि से सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहे हैं...**' सम्यग्दर्शन के

आठ अंग हैं न? निःशंक आदि। पच्चीस दोष टाले। समझे? संवेग आदि वैराग्य करे। **'उनको धारण करता है; परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेत के सब साधन करनेपर भी अन्न नहीं होता,...'** ज़मीन बहुत साफ की, बोर का वृक्ष गहराई से निकाल दिया, कँकर निकाल दिये, साफ। परन्तु बीज बोए बिना फ़सल होती नहीं। फ़सल कहते हैं न? क्या कहते हैं? हिन्दी में... अपने में कहते हैं न मोल, अपने में मोल कहते हैं। बीज के बिना, बीज बोए बिना फ़सल होती नहीं। चाहे जैसा खेत साफ किया, कँकर निकालकर। हमारे 'खस' (एक गाँव) में रायचंद कुम्हार थे। बहुत साफ करे, बहुत साफ करे। रायचंद नहीं? दीक्षा ली थी। ऐसा खेत साफ करे, बीज बोए नहीं। घास हो।

ऐसे अनादि काल का अज्ञानी आत्मा पुण्य और पाप की क्रिया में सुधारकर ज्यादा से ज्यादा पुण्य का सुधार करे और राग मंद करे, राग मंद करे, कोमलता करे, सेवा करे, कोमल, कोमल, कोमल.. लेकिन वह राग मंद किया वह तो खेत साफ हुआ, लेकिन अन्दर में ज्ञानानंद का बीज बोए बिना सम्यग्दर्शन का अनुभव होता नहीं और सम्यग्दर्शन का अनुभव हुए बिना जन्म-मरण की गाँठ उसको गलती नहीं। जन्म-मरण में उसको रुलना ही पड़ता है। समझ में आया?

देखो भाई! यहाँ पच्चीस दोष टाले ऐसा कहा है। व्यवहार है न, व्यवहार। पच्चीस दोष है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को टाले, उसको माननेवालों को भी धर्मी माने नहीं, ऐसे पच्चीस दोष टाले। परन्तु आत्मा चिदानंद भगवान ज्ञानानंद प्रकाशमूर्ति, उसके सन्मुख हुए बिना ऐसी क्रिया से कभी मोक्ष का लाभ होता नहीं। ओहोहो..! बहुत कठिन जगत को। समझ में आया? लोगों को बाहर की बहुत पड़ी है, बाहर की।

एक बार कहा था न? वह मुंबई आये थे न? मुंबई, (संवत) २०१५ की साल में, नहीं? झवेरी बज़ार में चार लाख का मन्दिर (बना)। बड़ी धामधूम, लाखो लोग। अंतिम रथयात्रा में हम साथ में थे न। अंतिम रथयात्रा थी। तोलाराम अभी गुजर गये न? तोलाराम मारवाड़ी नहीं? वच्छराजजी ने यहाँ मकान बनाया न? तीन भाई। आठ-दस वर्ष पहले एक-एक को अस्सी-अस्सी लाख का बटवारा हुआ था। एक-एक को अस्सी-अस्सी लाख (आये)। तीन भाई हैं। .. सवा लाख डाले। गोगीबाई ब्रह्मचारी। फिर (संवत) २०१४ की साल में उसने १४ लाख का मन्दिर बनवाया, लाड़नू में। उसका पिताजी का नाम रखकर, तीन भाईओं के बीच १४ लाख का मन्दिर बनवाया। फिर यहाँ रथयात्रा में हमारे साथ थे। लोग बहुत थे न। ऊपर खचाखच.. ओहोहो..! क्या कहते हैं? क्या कहते हैं? कालबादेवी आधा-पौना घण्टा बन्द। जनता चल सके नहीं, इतने लोग। वह सेठ मेरे साथ थे, तोलाराम। अभी चल बसे, आठ दिन पहले,

शुक्रवार को। वह कहे, महाराज! मेरे शहर में ऐसा बना दो न। मेरे लाड़नू में ऐसा बना दो। अरे.. सेठ! वह करने से होता है? मुंबई का वैभव कहीं लाड़नू में आये? लेकिन वह बाह्य की महिमा। प्राणभाई! भोले थे बेचारे, बहुत बुद्धि नहीं थी। गजराजजी की बुद्धि थी, छोटे गजराजजी है न? उनकी बुद्धि बहुत। तीन भाई हैं, वच्छराजजी, छोटे गजराजजी और बड़े तोलाराम। बड़ी कंपनी है वहाँ कलकत्ता। ऐसी चीज मेरे (लाड़नू में कर दो)। लेकिन बाहर की चीज क्या आत्मा कर सकता है? धन्नालालजी! यह तो उसके कारण से आता है और जाता है। आत्मा के कारण से नहीं। आत्मा तो, या तो शुभराग करे, या अशुभराग करे, अभिमान करे अथवा ज्ञाता-दृष्टा होकर जाने की मेरा कुछ कार्य है नहीं। लोगों को बाहर की महिमा.. ओहोहो..! १४ लाख का मन्दिर बनाया तब आप के घर ऐसी शोभा नहीं थी? महाराज! ऐसी तो नहीं थी। प्राणभाई! बहुत लोग और साथ में मैं था न, सब सेठ साथ में रथयात्रा में, बड़े-बड़े करोड़पति साथ में थे। लोगों को ऐसा लगे, आहाहा..! लोग देखने निकले। क्या है यह? समझे? सौ साल में ऐसा नहीं हुआ था, हाँ! ऐसी रथयात्रा हुई। दो हाथी पर सुवर्ण का डाला था, सेठ का आया था न? सर हुकमीचंदजी सेठ का हाथी का सुवर्ण का सामान इन्दौर से आया था। लोग तो देखकर... ओहोहो.. ये! भाई! वह तो पूर्व पुण्य का ठाठ है। समझ में आया? धर्म नहीं। उसमें शुभराग प्रभावना में हुआ हो तो पुण्यबन्ध का कारण है। उस चीज के कारण से नहीं। अपने में राग शुभ हो कि ऐसी प्रभावना हो, ऐसा हो, दया, दान.. बाहर में लोग जाने, समझे ऐसा भाव हो तो उससे पुण्य बन्धे और राग से भी मैं पृथक् ज्ञानानंद हूँ ऐसी अंतर की दृष्टि किये बिना आत्मा को धर्म तीन काल तीन लोक में होता नहीं। ओहोहो..!

गले के नीचे बात उतरनी कठिन। नये लोगों को तो यह ऐसा लगे... हैं? यह तो गले के नीचे उतरना कठिन है। समझे न? गले के नीचे न उतरे तो उसकी माँ बेलन डालती है न? बेलन डालकर मोसंबी डाले। उसमें तो जबरजस्ती (करे) समझे बिना (कि) जल्दी बैठे...। धीरे-धीरे विचार करे कि हम क्या मानते हैं? और सत्य का स्वरूप क्या है? ऐसी तुलना करे, तुलना। बनिये तो तुलना बहुत करते हैं। एक ज्वार हो तो तुलना करे, यह ज्वार अच्छी है और यह बाजरा अच्छा है। यह हीरा अच्छा और यह हीरा खराब है। यह कपड़ा अच्छा और यह कपड़ा खराब है। प्राणभाई! भींडी की सब्जी लेने जाये तो जाँच करे। सड़ा न हो, ऐसा न हो... उसको क्या कहते हैं? कीड़ा पड़ा न हो, चूवो.. चूवो। वह सब स्वतंत्र भाषा होती है। करेले में चूवा न हो। भींडी होती है न? भींडी, उसमें बहुत ढँढे। चार पैसे का सेर। अभी तो चार पैसे का कहाँ मिलता है? यह तो पहले की बात है। अभी चार आना

या ऐसा कुछ है। वहाँ क़ीमत करे। 'हीरा माणेक परख्या, परख्या हेम कपूर, पण एक न परख्यो आत्मा, त्यां रह्यो दिगमूढ'। अनादि काल से आत्मा क्या चीज है? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा जिसको तीन काल तीन लोक का ज्ञान है, वह आत्मा किसे कहते हैं? और धर्म क्या है? उसकी पीछान उसने की नहीं।

तो कहते हैं, पच्चीस दोष टाले, (संवेगादिक) धारे, '**परन्तु जैसे बीज बोए बिना खेत के सब साधन करनेपर भी अन्न नहीं होता, उसी प्रकार सच्चा तत्त्वार्थश्रद्धान हुए बिना...**' लो, यह सारांश। जब तक सम्यक् सच्ची तत्त्व की श्रद्धा, जीव, अजीव, पुण्य-पाप, बन्ध, मोक्ष का क्या स्वरूप है, उसकी श्रद्धा बिना समकित होता नहीं। कहो, समझ में आया? '**पंचास्तिकाय व्याख्या में जहाँ अन्त में व्यवहाराभासवाले का वर्णन किया है वहाँ ऐसा ही कथन किया है।**' अनन्त बैर प्रभु! तूने महाव्रत पाले, महाव्रत--पंच महाव्रत। वह तो राग है पंच महाव्रत, पर ऊपर लक्ष्य जाता है। उसको न मारना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना वह सब तो राग है, विकल्प है, पुण्यबन्ध का कारण है। लेकिन वह महाव्रत पालने पर भी महाव्रत से पार आत्मा क्या है, दृष्टि का अनुभव किया नहीं तो तेरा एक भव भी कम नहीं हुआ। पोपटभाई! वहाँ तो पाट पर बैठकर कहे, जय नारायण! सच्ची बात होगी, भाई! अपने से कुछ त्यागी होकर बैठे हैं न, कुछ समझे तो होंगे न। अरे..! बापू! उस समझ का घर प्रभु! बहुत महँगा है, हाँ! सच्ची समझ का घर बहुत गहरा, महँगा और उसका स्थल भी बहुत क़ीमती अलौकिक है। व्यवहार का अन्त में बहुत वर्णन किया है, ऐसा जान लेना। उसका भी कुछ फल है नहीं। लो, अब वह.. अब आया, हेमराजजी और दुलचंदजी .. दो नय। अब, थोड़े दिन रहे न। कल से आठ दिन रहे, बारह दिन बाकी रहे क्लास के।

यह विषय थोड़ा सूक्ष्म है। विचार करनेवाले के लिये अंतर की भूल कहाँ रह जाती है, उसका यह मक्खन है। थोड़ा परिचय करना पड़े, भाई! क्या नाम बड़े का? हसमुखभाई! यूँ ही नहीं मिल जायेगा, वहाँ लादी और पत्थरमें से। बहुत अभ्यास करे, निवृत्ति ले, थोड़ा-बहुत सुने तो उसकी तुलना करे तो यह समझ में आये ऐसा है। पिताजी मानते हैं इसलिये अपने सच्चे हैं, ऐसा भी नहीं चलेगा। हैं? पोपटभाई ने पिताजी ने यहाँ किया इसलिये ठीक है, ऐसा भी नहीं चलता यहाँ तो। उसको स्वयं को जाँच करनी चाहिये कि क्या चीज है? अन्दर से जाँच, अवलोकन जड़ का, चैतन्य का, विकार का, निर्विकार का क्या अवलोकन है और क्या विपरीतता है, यह स्वयं जाँच किये बिना (कार्य नहीं होता)। लोक में ऐसा कहते हैं न? नहीं, मैं स्वयं जाँच करुँगा बाद में कहुँगा, आपने जाँच की लेकिन मैं स्वयं जाँच करुँगा। शेठी! करते

होंगे कि नहीं? महेन्द्रभाई वहाँ करे कि मैं सब खातावही जाँचूँगा। भले आपने ... लिखा हो। मैं जाँच लूँग सब, कितना आया, कितना गया, कितनी कमाई हुई, बारह महिने में कितनी बढ़वारी हुई? बनिये को तो दिमाग में दिखता हो। क्यों कुंवरजीभाई! ममता तो दिखती हो। ममता कहता हूँ, ममता। दस लाख थे, उसमें पचास हज़ार, पचहत्तर लाख इस साल बढ़े, पचास हज़ार का खर्च हुआ, ग्यारह लाख हुए, इतना पैसा लेना है, इतना यह, यह माल महँगा आया और अब सस्ता हुआ इसलिये इतना नुकसान है, सब नज़र के सामने दिखे। बिना लिखे, बिना ... दिमाग में दिखाई दे। भाईलालभाई! यह तो अनुभव की बात है कि नहीं?

यहाँ क्या है? अनंत काल से क्यों नुकसान हुआ? मुनाफा कैसे मिलता है? कितना मुनाफा मिला? कितना नुकसान हुआ? मैं मुनाफा के पंथ में हूँ? या नुकसानी के पंथ में हूँ?

मुमुक्षु :-- हिसाब देने आने पड़ेगा।

उत्तर :-- बात सच्ची है।

अब यहाँ, २५३ पृष्ठ, इसमें ३५०वाँ पृष्ठ है, (उभयाभासी मिथ्यादृष्टि)। क्या कहते हैं देखो। '**अब, जो निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के आभास का अवलम्बन लेते हैं...**' क्या कहते हैं? आत्मा निश्चयाभासी... निश्चय यानी सत्य की खबर नहीं, लेकिन सत्य का आभास, लेबास। मैं सिद्ध समान आत्मा हूँ, मैं शुद्ध हूँ, मेरी दशा में राग भी नहीं ऐसा माननेवाला, निश्चय सत्य का आभास नहीं है, सत्य का आभास नहीं है लेकिन निश्चय का खोटा आभास (है), सत्य का मानता नहीं। मैं सिद्ध समान हूँ, मेरे में राग ही नहीं है। ओहो..! मैं तो शुद्ध निर्मल सच्चिदानंद हूँ। सच्चिदानंद बात तो स्वभाव में है। तेरी दशा में यदि शुद्धता हो तो यह परिभ्रमण किसका? हैं? तेरी दशा--हालत...

सुवर्ण की तो सोलह वाल--उसकी शक्ति है, लेकिन पर्याय की दशा में दो वाल तांबा या कथिर साथ में हो उसको सोलह वाल माने तो मूर्ख है। समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा अन्दर में स्वभाव तो उसका शुद्ध है। जैसे छोटीपीपर (में) चौसठ पहोरी चरपराई (है), लेकिन प्रगट हुए बिना ऐसे ही पूरी पीपर खाने लगे तो चौसठ पहोरी चरपराई लगेगी? लगे कि नहीं? अन्दर चरपराई है, चरपराई है। लेकिन चरपराई तो प्रगट घिसकर करे तो प्रगट होती है। यूँ ही तू चौसठ पहोरी खा, चरपराई नहीं लगेगी। तीखास समझे? चरपराई आप की भाषा में, चरपराई। एक-एक पीपर में चौसठ पहोरी चरपराई है। लेकिन वह प्रगट कर तो दशा में आनेवाली है। प्रगट किये बिना तू (माने कि) उसमें चोसठ पहोरी है तो मैं खाऊँ गरमी लाने को (तो ऐसा नहीं

होता)। देते हैं न? चौसठ पहोरी बहुत होती है, एक वाल दे। मरते समय भी बहुत ठंडा हो जाय तो वह दे अथवा सेका हुआ चना, अब तो चना-बना कौन देता है? इंजेक्शन हो गये अब तो। पहले तो सेका हुआ चना और सोंठ (देते थे), मरते वक्त बहुत झुकाम हो, ठंडा होने लगे अंतिम स्थिति में, तब (कहे) लगाओ दाळिया। दाळिया समझे? दाळिया नहीं समझते? चना, चना, पक्का चना, भुँजा हुआ चना। उसका करे आटा, उसमें डाले सोंठ। ठण्ड हो तो लगाये, और यह क्या कहते हैं? कम्बल। ऊन का कम्बल ओढाये। आयुष्य हो तो बचे, नहीं तो मर जाये। ओढा हुआ देखा है, सोंठ लगायी हो तो भी मर जाये। समझ में आया?

कहते हैं कि उसमें गरमी होती है न? तो एक वाल दे तो भी उसमें गरमी बहुत है, चौसठ पहोरी प्रगट हुई उसमें। लेकिन ऐसे ही दो-पाँच दाना दे दे वाल जितनी, चौसठ पहोरी वाल जितनी चरपराई होती है उसमें? नहीं। प्रगट पर्याय बिना अवस्था प्रगट हुए बिना शुद्धता आती नहीं।

ऐसे आत्मा तो अन्दर शुद्ध है, परिपूर्ण निर्मल है, आनंदकंद ही है। मोक्ष होने के लायक उसमें चीज है, अंतर में। लेकिन दशा में--हालत में--वर्तमान पर्याय में, जैसे पीपर की वर्तमान में चरपराई थोड़ी है और काली है, अन्दर में हरी और तीखी है, अन्दर में रंग लीला.. लीला समझते हो? हरा, अन्दर में रंग हरा, मेहँदी की छाप में हरा रंग हुआ है, मेहँदी की छाप में, मेहँदी है न? ऐसे हरा, अन्दर लाल। ऐसे भगवान आत्मा उसकी वर्तमान दशा में राग और द्वेष की हरा रंग दिखता है, अंतर में आनंद और शुद्धता का रंग भरा है। भगवान जाने कहाँ होगा और क्या होगा? उसमें माने, वह बात बराबर। हरा रंग दिखे और घूटने से लाल हो। मेहँदी होती है न? लगाते हैं कि नहीं? नख को लाल करने को। पुनः कोई यहाँ लगाये तो हाथ लाल हो जाये। हाथ के साथ अँगूली रखे तो अँगूली भी लाल हो जाये। अँगूली होती है न? अँगूली ऐसे रखे। है तो हरी, लाल कहाँ-से आया? अंतरमें से।

ऐसे यह भगवान आत्मा प्रत्येक आत्मा में अन्दर ज्ञान और आनन्द पूर्ण पड़ा है, लेकिन उसकी वर्तमान दशा जैसे काली दिखती है छोटीपीपर की और हरा रंग तो है नहीं और चरपरी भी बहुत थोड़ी (है)। ये खारीपीपर करते हैं न? खाना खाने के बाद दो-चार खाते हैं न? खारी-खारी। वह खारी चौसठ पहोरी हो? ऐसे अनादि से कितने ही निश्चयाभासी अज्ञानी सत्य का भान नहीं, अपनी दशा में मैं पवित्र हूँ, मैं तो भगवान हूँ, मैं शुद्ध हूँ ऐसा माननेवाले को भान है नहीं। तेरी वस्तु में शुद्धता है। प्रगट कर सम्यग्दर्शन, ज्ञान से तो होगा। ऐसे प्रगट मान ले, भ्रमणा में पड़ा है। समझ में आया? यह निश्चय कहा।

और व्यवहार। व्यवहार क्या? अपनी दशा में दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, कुल की परंपरा से राग की मंदता करके, क्रिया करते-करते मुझे धर्म होगा, पहले ऐसा करें फिर धर्म होगा, ऐसा माननेवाला व्यवहार-आभासी (है)। व्यवहार का सच्चा ज्ञान करनेवाला नहीं है, परन्तु व्यवहार का भेष पहना है। शाहुकार नहीं लेकिन शाहुकार का भेष। भाईलालभाई! आपके एक थे न? वसंतजी कच्छी, जे.पी. थे न? वसंतजी त्रिकमजी ऐसा कुछ था। उसका नाम लेकर लड़का यहाँ लिखे। उसका लड़का नहीं था, ढोंगी था। मैं वसंतजी त्रिकमजी का लड़का हूँ, जे.पी. का। मैं यहाँ इतना रूपया देता हूँ। साढे तीन हजार दिये। बोस्की का कपड़ा पहना था, साथ में स्त्री और कहे कि यह मेरी भतीजी है इसका मंगनी करनी है। फिर एक समयसार दिया। साढे तीन हजार दिये, फिर यहाँ-से चला गया। दे कहाँ? लिख दिया। यहाँ बैठा था, फिर आगे बुलाया। ऐसे भी ढोंगी होते हैं। कहाँ.. ढोंग (करता है)। बोस्की का कपड़ा पहना था, सोने की (अँगूठी) पहनी थी। जे.पी. वसंतजी त्रिकमजी का लड़का हूँ। भतीजी की मंगनी करनी है।

ऐसे आत्मा अनादि से वर्तमान दशा में पवित्रता प्रगट हुए बिना, मैं पवित्र हूँ, पवित्र हूँ, पवित्र हूँ ऐसा मान ले, ठगा जायेगा। और व्यवहार की क्रिया करते-करते, दया करके, दान करके, भक्ति करके, भगवान की पूजा करते-करते कल्याण होगा। धूल में भी नहीं होगा। वह तो राग, पुण्य है। पुण्य आये बिना रहता नहीं। पाप न हो तब पुण्य आता जरूर है। पुण्य होता है, धर्मी को भी पुण्य तो आता है। पूजा, भक्ति आदि। लेकिन वह पुण्यबन्ध का कारण सम्यग्दृष्टि--धर्मी जानते हैं। उससे रहित मेरी चीज (है)। अगाध आनन्द अन्दर मेरा पड़ा है, उसके अनुभव की स्थिरता जितनी हो उतना धर्म (है)। जितना राग आया, व्यवहाराभासी उस राग को ही धर्म मानता है। है न?

'**निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के आभास का...**' आभास यानी भास। भान नहीं, सत्य का ख्याल नहीं, व्यवहार का ख्याल नहीं। किसको निश्चय कहना, किसको व्यवहार कहना, खबर नहीं। नाम ले लिया कि हमें दोनों नय हैं। '**ऐसे मिथ्यादृष्टियों का निरूपण करते हैं।**' उसका कथन करने में आता है।

'**जो जीव ऐसा मानते हैं...**' जो जीव ऐसा मानते हैं '**जिनमत में...**' वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा, उसका अभिप्राय--उसके मार्ग में '**निश्चय-व्यवहार दोनों नय कहते हैं,...**' दोनों नय है, दोनों ज्ञान के अंश हैं। दोनों ज्ञान के अंश हैं। समझ में आया? ज्ञान का अंश क्या? नय क्या? आत्मा वस्तु है वस्तु, उसमें एक ज्ञानगुण त्रिकाल है। उसकी वर्तमान दशा में वह त्रिकाल द्रव्य वस्तु क्या और वर्तमान

दशा की कितनी कम है, विकार से और निर्विकार से, उसका ज्ञान करना। तो दोनों ज्ञान करने को प्रमाणज्ञान कहते हैं। प्रमाण--अखण्ड पूर्ण ज्ञान। और उस प्रमाणज्ञान का एक भेद--अवयव उसको नय कहते हैं। नय यानी ज्ञान का एक (अंश)। वस्तु का एक धर्म नाम एक भाव को जाननेवाला ज्ञान का अंश को नय कहने में आता है। सुना भी न हो यह, नय माने क्या?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नय, नय। लोग न्याय नहीं कहते? यह न्याय है। न्याय यानी क्या? नय। नि अर्थात् जिस प्रकार का वस्तु का स्वरूप है, उस ओर ज्ञान को ले जाना उसको नय कहते हैं। समझ में आया? वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के पंथ में पूर्ण वस्तु का ज्ञान करना उसको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण। पूरी चीज में पूर्ण द्रव्य हूँ, शक्ति से पूर्ण हूँ, पर्याय में अपूर्णता है और राग है। उन सब का एकसाथ ज्ञान करना वह प्रमाण है। प्र-माण--माप ले लिया। पदार्थ का माप ले लिया कि पदार्थ ऐसा है। और उस प्रमाण के एक अंश को--अवयव को--भाग को नय कहते हैं। कि जो नय का ज्ञान त्रिकाल वस्तु को जाने वह निश्चय। वर्तमान भेद, राग और अपूर्णता को जाने वह व्यवहार। ऐसी तो खबर है नहीं और मानते हैं कि हमें तो दोनों नय का साधन करना है। सूक्ष्म बात है, पोपटभाई!

मुमुक्षु :-- ....

उत्तर :-- सूक्ष्म नहीं है?

'**दोनों नय कहते हैं, इसलिये हमें उन दोनों को अंगीकार करना चाहिये...**' लो, भगवान ने दो नय कहे हैं--व्यवहार और निश्चय। व्यवहार यानी यह आप का धंधे का व्यवहार नहीं, हाँ! धंधा-बंधा का व्यवहार नहीं। एक बार वह आये थे न? मंगलदास। मंगल जेसंग, जेसंग उजमशी। यह बड़ी है न? सात-आठ करोड़ रूपया है। शांतिभाई के पिताजी। यहाँ आते हैं, आये तो (सही), यहाँ सब आते हैं। एक बार आये थे, बहुत बार आते थे। मंगलदास जीवित थे, पुनर्विवाह किया था। शांतिलाल के पिताजी। उन दिनों में इतना पैसा नहीं था, साठ लाख जितना था। वह कहे, महाराज! आप व्यवहार-व्यवहार कहते हो, लेकिन हमें रोग आये तो दवाई नहीं करनी? अरे..! सेठ! क्या कहते हो? आप को कुछ मालूम नहीं। रूपया का स्वामी बनकर बैठे, भाईलालभाई! हमें सेठ से कुछ लेना तो नहीं था। उन दिनों में साठ लाख थे, हाँ! यहाँ (संवत) १९९४ के वर्ष में यह मकान हुआ, तब आये थे। १९९१-९२ में वहाँ हीराभाई के मकान में आये थे। बहुत बार (आते थे), भावनगर आये तो तब दर्शन करने आये, गाड़ी लेकर। कहा, व्यवहार आपने सुना नहीं, जैन में आप

का जन्म हुआ और आप को, यह खातावही, वह खातावही बदली, पाँच लाख मिला, सांठ के पैंसठ हुए, क्या है उसमें? वह व्यवहार हम यहाँ कहते हैं? आपका दवाई करने का व्यवहार? वह व्यवहार कौन कहता है?

यहाँ तो आत्मा का भान हो, मैं अखण्ड शुद्ध चैतन्य सच्चिदानंद आत्मा पवित्र भगवान, उसकी पर्याय प्रगट पवित्र दशा हुई, उसमें पूर्ण पवित्रता न हो तब तक दया, दान का भाव आता है उसको व्यवहार कहने में आता है। कितने ही साल से... उसके पिताजी को तो कुछ परिचय था, अगास में थे। जेसंगभाई थे न? जेसंग उजमशी। अगास में लल्लुजी थे न? ... समझ में आया?

कहते हैं, हमें तो दो नय है, निश्चय भी है, व्यवहार भी है। दोनों आदरणीय है। देखो! अंगीकार कहा है न? '**हमें उन दोनों को अंगीकार करना चाहिये।**' लेकिन दो अंगीकार हो सकती नहीं, तुझे मालूम नहीं। समझ में आया? '**ऐसा विचारकर...**' हमें तो, त्रिकाल द्रव्य है उसकी पर्याय में निर्मलता हो.. उसको निर्मलता तो हुई नहीं है, परन्तु हमें निश्चय भी अंगीकार करना है और व्यवहार भी अंगीकार करना, आदरणीय मानना। निश्चय भी आदरणीय है और दया, दान का विकल्प उठते हैं वह भी हमें उपादेय नाम आदरणीय है। क्योंकि भगवान ने दो नय कहे हैं, एक भी नय छोड़ नहीं सकते और वस्तु समझ में आये नहीं। समझ में आया?

'**ऐसा विचारकर जैसा केवल निश्चयाभास के अवलम्बियों का कथन किया था,...**' पहले। मैं शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ, केवलज्ञानमय हूँ, मेरे में राग है नहीं, पवित्रता ही है। पर्याय में भी हाँ! '**वैसे तो निश्चय का अंगीकार करते हैं।**' मैं तो पवित्र परमात्मा हूँ, मुझे कुछ है नहीं। बड़ी बात है, तो यह इच्छा किसको उत्पन्न होती है? खाने की, पीने की इच्छा उत्पन्न होती है वहाँ परमात्मपना आया कहाँ-से? समझ में आया? वह तो राग है और तुम कहते हो कि मैं पवित्र हूँ, पवित्र हूँ। खाने का राग, पीने का राग, सोने का राग, वह सब राग है, इच्छा है, वृत्ति है, विकल्प का उत्थान है, विकार का उत्थान है। वहाँ मान लेना कि मुझे तो मोक्ष है, मुझे तो मोक्ष ही है। ऐसा माननेवाला निश्चय को अंगीकार करके मानता है लेकिन वह मिथ्यात्व है, उसको खबर नहीं। '**और जैसे केवल व्यवहाराभास के अवलम्बियों का कथन किया था, वैसे व्यवहार का अंगीकार करते हैं।**' हम दया पालते हैं, पुण्य करते हैं, भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं वह व्यवहार है और व्यवहार है वह हमारा नय का विषय है, हमें लाभदायक है।

'**यद्यपि इस प्रकार अंगीकार करने में दोनों नयों के परस्पर विरोध है,...**' थोड़ी सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध तो शक्ति में--स्वभाव में है और प्रगट

पर्याय--दशा में शुद्धता प्रगट करे तो उसको निश्चय कहने में आता है और साथ में अभी राग रहता है, भक्ति, पूजा, दया, दान (का भाव) आता है धर्मी को भी, लेकिन वह राग है, उसको जानना कि यह राग है, उसका नाम व्यवहार (है)। समझ में आया? लेकिन वह राग है वह अंगीकार करने लायक है और निश्चय भी अंगीकार करने लायक है, मूढ है, तुझे भ्रमणा हो गयी है।

'**दोनों नयों के परस्पर विरोध है,...**' देखो! एक ज्ञान का अंश कहता है कि मैं पवित्र हूँ, दूसरा ज्ञान का अंश कहता है कि, मेरे में अपूर्णता, राग और निमित्त है। तो दो का विषय विरुद्ध है। तो दो को अंगीकार करना ऐसा बन सकता नहीं। समझ में आया? '**दोनों नयों के परस्पर विरोध है, तथापि करे क्या? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं,...**' निश्चय किसको कहते हैं? निश्चय नाम सत्य, व्यवहार नाम आरोपित काम। सत्य भगवान आत्मा... कबीर में भी सत्यनाम भगवान ऐसा बोलते हैं। उसको भी खबर नहीं है सत्यनाम क्या है? अन्दर सत्य परमात्मा.. ऐसी बातें बहुत करे। समझे न? वहाँ एक है न? राधा-कृष्ण बड़ा पंथ है, आगरा में। आगरा में हम गये थे न। देखने तो सब आये न। लोगों को मालूम पड़े कि बड़ा संघ आया है। अन्दर सब बताया। साढे तीन करोड़ रूपया तो मकान एक मजला भी नहीं किया उसमें डाल दिये, साढे तीन करोड़। अभी मजला नहीं बनाया।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं। भाईने देखा है। अभी तो साधारण खँभे हैं। उसमें .. क्या कहते हैं? अंगूर आरस में चित्र बनाया है। साढे तीन करोड़ का। अभी साधारण मकान। उसमें तो कितना ही खर्च करना होगा। वह सब कहते थे। उसका फोटो था न, अन्दर फोटो था। ... सब-से बड़ा हो गया। अन्दर लिखा था। क्या बड़ा किसको कहना? अरे.. भाई! बापू! वह चीज आत्मा सच्चिदानंद प्रभु पूर्ण, उसका अंतर अनुभव करना और इसमें थोड़ी कचास है, पूर्णता नहीं है तो राग आता है जरूर, धर्म का श्रवण का, भक्ति का, पूजा का, दान का, यात्रा का, उस भाव को जानना कि है, उसका नाम व्यवहार है। उस भाव का आदर करना और निश्चय का भी आदर करना, वह तो परस्पर विरूद्ध हुआ। दोनों का आदर करने में तो विषय विरूद्ध है, दोनों की आराधना हो सकती नहीं। समझ में आया?

'**करें क्या? सच्चा तो दोनों नयों का स्वरूप भासित हुआ नहीं, और जिनमत में दो नय कहे हैं...**' दोनों कहा है, निश्चय भी कहा है और व्यवहार भी कहा है, नहीं है ऐसा नहीं। '**उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता,...**'

व्यवहारनय छोड़े तो निश्चय का एकांत हो जाता है, निश्चय छोड़े तो व्यवहार का एकांत व्यवहाराभासी हो जाता है। क्या करें? समझ में आया नहीं कि व्यवहार-निश्चय क्या है? हमें तो दोनों को अंगीकार करना। भगवान ने दो नय कहे हैं, भगवान ने कहा है कि नहीं? मुनियों ने कहा है कि नहीं? देखो, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज धर्मधोरी, उन्होंने भी व्यवहारनय कहा है। कौन ना कहता है? सुन तो सही। क्या कहा है?

भगवान आत्मा अपना शुद्ध चिदानंद स्वरूप, अनुभव दृष्टि सम्यग्दर्शन प्रगट करे वह निश्चय है। उसका आश्रय लिया है। और उसमें राग भक्ति आदि भाव, साधर्मी प्रति प्रेम, प्रभावना ऐसा राग होता है। वह जानना कि इस भूमिका में ऐसा है। उसका नाम व्यवहार है। व्यवहार आदरणीय है और निश्चय आदरणीय है, ऐसी दो बात तो भगवान ने कभी कहीं नहीं कही। समझ में आये नहीं कि क्या करना? दोनों लेना, दोनों मानना।

'**दो नय कहे हैं उनमें से किसी को छोड़ा भी नहीं जाता, इसलिये भ्रमसहित दोनों का साधन साधते हैं,...**' भ्रमणा से। देखो! साधन यानी निश्चय का भी साधन साधे, व्यवहार का भी साधे। दो का साधन होता नहीं। दो का साधन होता नहीं, साधन एक होता है--अंतर निश्चय का। और राग आये वह जानने लायक है। साधन दो का नहीं होता, साधन एक का होता है। दोनों साधन साधें तो अपने दोनों नयों को माना कहा जाय, ऐसा करके माने, लेकिन वस्तु की खबर नहीं है। क्यों नहीं है उसकी विशेष बात करेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण वद-२, शुक्रवार, दि. १७-८-१९६२,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ९

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवाँ अध्याय, उसमें दो नय के अवलम्बनवाले का कथन है। निश्यनय का क्या स्वरूप है और व्यवहारनय का क्या स्वरूप है, उसे जाने बिना दोनों का अवलम्बन का हम साधन करते हैं, ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। उसका कथन चलता है। समझ में आया? जैनमत में दो नय कहे हैं, जैनमत में दो है न?